Shodh International: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Vol. 1, Issue – 2015

हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकासः मूल्यांकन

डॉ0 सर्वेश कुमार मिश्र*

हिन्दी साहित्य की इतिहास लेखन परंपरा में डॉ0 राम स्वरुप चतुर्वेदी का नाम महत्वूपर्ण है। उनका प्रयास एक नवीन रुप लिए हुए है। या यूँ कहें कि आधुनिक युग में साहित्य के इतिहास की नई महत्वाकांक्षा'' है। इनकी पुस्तक का नाम 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' है। यह ईस्वी सन् 1986 जनवरी में लोक भारती प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। वास्तव में इस पुस्तक में रचनाकार की महत्वाकांक्षा फलीभूत भी हुई है। यह ग्रंथ हिन्दी भाषा, साहित्य और संवेदना का विकास होने के साथ ही साथ आलोचना एवं सृजनात्मकता के गुणों से भी पूरित है। इसमें सांस्कृतिक पृष्ठभूमि एवं साहित्यिक धारा का अलग–अलग विवेचन न करके उसके संश्लिष्ट रुप का अवलोकन कराने का प्रयत्न किया गया है। इस इतर प्रयास को साहित्य अकादमी के द्वारा पुरस्कृत भी किया गया।

आचार्य राम स्वरुप चतुर्वेदी के हिन्दी साहित्य और संवेदना के विकास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा निर्धारित किये गये हिन्दी साहित्य के इतिहास के ढ़ाँचे को कुछ संशोधन के साथ ईस्वी सन् में रुपान्तरण[1] करके यथावत स्वीकार कर लिया गया है। स्वीकार ही नहीं बल्कि दूर तक उनके पीछे चलने का प्रयास भी किया गया है। उनके द्वारा किया गया काल विभाजन एवं नामकरण इस प्रकार है–

आदिकाल (वीरगाथा काल) :1000–1350

पूर्व मध्यकाल (भक्ति काल) :1350–1650

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) :1650–1850

आधुनिक काल :1850–..... ।

आचार्य शुक्ल द्वारा किये गये आदिकाल के नामकरण ''वीरगाथा काल'' को हिन्दी जगत् में निर्विवाद रुप से ग्रहण नहीं किया गया है। बल्कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सुझाये गये आदिकाल नाम को बहुतायत में मान्यता प्राप्त है। फिर भी 'वीरगाथा काल' नाम का समर्थन एवं ग्रहण इस रुप में किया गया है। ''आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल को 'वीरगाथा काल' नाम बहुत समझ बूझ कर दिया है। इनकी दृष्टि में इस काल का केन्द्रीय साहित्य रासो काव्य है न कि सिद्वनाथों की बानियाँ। ये बानियाँ धर्म और कर्म काण्ड के प्रभाव में अधिक हैं, साहित्य का ऐहिक रुप वहाँ कम ही है। फिर भाषा की दृष्टि से हिन्दी की वास्तविक शुरुआत जितने स्पष्ट रुप से रासो में दिखाई देती है, उतनी इन अपभ्रंश आधारित बानियों में नहीं। XXXXXXXXXXX फिर आचार्य शुक्ल के नामकरण में वीर शब्द ही नहीं गाथा का भी विशिष्ट अर्थ है। गाथा के साथ शौर्य और 'शिवैलरी' शब्द जुड़े हुए है। जहाँ वीर का प्रेरक भाव अनिवार्य रुप से श्रृंगार है। यों 'वीर गाथा' में वीर और श्रृंगार एक युग्म के रुप में चित्रित होते है। धर्म ऐहिकता, फिर ऐहिकता में वीर और श्रृंगार का अन्तर्भाव–लगता है ईश्वर की परिकल्पना में मनुष्य को सिरजा जा रहा है–महान और उदान्त, वीर और तेजस्वी।''[2]

*एसो0प्रोफेसर, फ0अ0अ0 राज0स्ना0 महाविद्यालय, महमूदाबाद, सीतापुर।
E-mail Id: faagovtpgcollege@yahoo.in

© Eureka Journals 2015. All Rights Reserved. **ISSN: 2581-3501**

हिन्दी जगत्. आचार्य शुक्ल द्वारा दी गई इतिहास की इस थाती को अपने हृदय से लगाये हुए है। किंतु उनके द्वारा आदि काल के 'वीरगाथा काल' नामकरण किए जाने और आचार्य चतुर्वेदी के समर्थन से सहमत नहीं हुआ जा सकता। क्योंकि उन्होंने जिन बारह रचनाओं को आदिकाल के नामकरण का आधार बनाया है वे विश्वसनीय नहीं है। बारह मे से नौ वीर गाथापरक है। उनके बारे में शुक्ल जी का ही मानना है कि खुमाण रासो परवर्ती काल की है, पृथ्वीराज रासो जाली ग्रंथ है, जयचंद प्रकाश व जय मयंक जसचंद्रिका अनुपलब्ध है, परमाल रासो गूँज मात्र है मूल शब्द नहीं अर्थात् प्रक्षेप हैं। इसलिए ''आचार्य शुक्ल द्वारा दिया गया आदिकाल को 'वीर गाथाकाल' नाम जितना अप्रामाणिक सिद्ध हुआ उतना कोई अन्य नाम नहीं।''[3]

चतुर्वेदी जी के द्वारा 'वीरगाथा काल' नाम की ही भाँति शुक्ल जी के भक्ति के उदय की अवधारणा की भी पुरजोर वकालत की गई है। ''मध्यकालीन भक्तिकाल के उदय में इस्लाम की आक्रामक परिस्थिति का गुणात्मक योगदान है। इसे कई कोणों से देखा और समझा जा सकता है। और ऐसा मानने में कोई साहित्यिक, सामाजिक या कि ऐतिहासिक संकोच की बात भी नहीं जान पड़ती।''[4]

रीतिकाल की समीक्षा करते समय चतुर्वेदी जी द्वन्द्वात्मकता में उलझे हुए दिखाई पड़ते है। एक ओर तो वे डा0 नगेन्द्र द्वारा रीतिकाल पर की गई टिप्पणी–'इसका स्वरुप प्रायः सर्वत्र ही गार्हस्थिक है''–की प्रतिक्रिया में कहते है कि ''यह गार्हस्थिकता स्पष्ट ही चन्द्र, जायसी, सूर या तुलसी की परिकल्पना से भिन्न है। यहाँ की गार्हस्थिकता महज अन्तःपुर तक सीमित है। उसके बाहर की बैठक से जोड़ने वाले आंगन तक भी वह कम ही जाती है।''[5]. इसी संदर्भ में जब वे आगे चर्चा करते है तो ठीक इसके विपरीत दृष्टिकोण रखते हुए दिखाई पड़ते है। ''इन मुक्तकों में अंकित जीवन प्रायः शत–प्रतिशत सामान्य गृहस्थ घरों का है। ये नायक–नायिकाएं, राजा–रानियाँ, राजकुमारियाँ नहीं है, वरन् साधारण गोप–गोपियाँ या खाते पीते घरों की युवतियाँ हैं, जिन्हें उस वर्ग का मध्यवर्ग कहा जा सकता है। वीर गाथा काल के काव्य में श्रृंगार के उपकरण राजकीय और सामन्ती जीवन के चरित्र थे, रीतिकाल का श्रृंगार पूरा का पूरा इस मध्यवर्ग के आश्रित है''[6]

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ भी आचार्य शुक्ल के द्वारा स्थापित मान्यताओं के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करते हुए किया गया है ''आधुनिक काल, जिसकी विशिष्टता को परिलक्षित करके आचार्य शुक्ल ने उसे ठीक ही 'गद्यकाल' का नाम दिया है।''[7] लेकिन उनका आधुनिक काल के उपविभाजन का आधार गद्य नहीं अपितु पद्य है–

भारतेन्दु युग	:	1870–1900
द्विवेदी युग	:	1900–1918
छायावाद युग	:	1918–1936
प्रगति–प्रयोगयुग	:	1936–1954
नई कविता–नवलेखन युगः		1954–1972
युवा लेखन	:	1972–1990

उन्होंने बीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य को अठारह–अठारह वर्षो के काल खण्डों में उपविभाजित कर नये रुप में प्रस्तुत किया है। प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद को एक ही काल खण्ड के भीतर समाहित कर दिया गया है, जिसके औचित्य को सिद्ध करने के लिए 'निराला जी' को आधार बनाया गया है। उनका मानना है कि ''प्रगतिवाद और प्रयोगवाद आरंभ में संयुक्त रुप में मिलते हैं। XXXXXXX दोनों धाराओं के रचनाकार निराला को सम्मिलित रुप से मानते है।''[8] प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों

© Eureka Journals 2015. All Rights Reserved. ISSN: 2581-3501

अलग–अलग भाव भूमि पर स्थित है, यह सर्वविदित है। चतुर्वेदी जी ने भी दोनों का अलग–अलग उल्लेख किया है। उन्होंने नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल को प्रगतिवाद तथा अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह व भवानी प्रसाद मिश्र को प्रयोगवाद के प्रतिनिधि कवि के रुप में स्थान दिया है।

'प्रगति प्रयोग युग' नाम की ही भाँति नई कविता के प्रारम्भ को वे दूसरे सप्तक के प्रकाशन वर्ष से न मानकर 'नई कविता' पत्रिका के प्रकाशन वर्ष से मानते है। इसमें उन्होंने एक तीर से दो शिकार किया है। एक तो नई कविता आन्दोलन में अज्ञेय के वर्चस्व को चुनौती दी है और दूसरे नई कविता पत्रिका और इलाहाबाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। ऐसे ही साठोत्तरी कविता आन्दोलन में 'अकविता' आन्दोलन को भी पीछे धकेलने की कोशिश की है। ''युवा लेखन की एक मुख्यधारा अकविता का कोई अर्थ नहीं सिवा इसके कि वह कविता होने का परंपरागत ढंग से बिलकुल अलग एक नया प्रकार है। XXXXXXX स्पष्ट ही मानव जीवन और यथार्थ का यह सर्वथा अतिरंजित यानि विकृत रुप है।''[9]

चतुर्वेदी जी ने नई कविता–नव लेखन युग को 1972 ई0 तक मानकर साठोत्तरी कविता आन्दोलन की उपलब्धियों को नई कविता के खाते में डालने का प्रयास किया है। ठीक उसी प्रकार जैसे आचार्य शुक्ल ने आदि काल के नामकरण में अपभ्रंश की रचनाओं को भी देशभाषा काव्य में समाहित कर दिया है। इसके मूल में जो कारण है वह यह कि अकविता आन्दोलनकारियों द्वारा नई कविता का विरोध पुरजोर ढंग से किया गया और चूंकि चतुर्वेदी जी नई कविता आन्दोलन से व्यक्तिगत रुप से जुड़े रहे हैं या यूँ कहा जाय कि नई कविता के साथ ही साथ अपने आपको स्थापित करने का प्रयास किया हैं।

'अकविता' को युवालेखन की मुख्यधारा मानते हुए भी चतुर्वेदी जी उसे एक दशक पीछे घसीट ले जाते है। इसे एक सोची समझी राजनीति के तहत किया गया प्रयास कहा जा सकता है।

इन सब त्रुटियों के होते हुए भी डॉ0 रामस्वरुप चतुर्वेदी कृत 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परंपरा में मील का पत्थर है। यद्यपि यह इतिहास ग्रंथ है फिर भी यह इतिवृत्त की शुष्कता को तोड़ता है। इसमें सृजनात्मक साहित्य का लालित्य है, आकर्षकता है, लुभावनापन हैं, प्रामाणिकता है और पाठक को रमाये रखने की सामर्थ्य है। रीतिकालीन हिन्दी कविता और तत्कालीन उर्दू शायरी का तुलनात्मक विवेचन, आचार्य शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के द्वारा प्रयुक्त 'जनता' और 'लोक' शब्द के परिप्रेक्ष्य में दोनों की साहित्येतिहास दृष्टि का सूक्ष्म भेद रमणीय स्थल हैं। यह कृति साहित्येतिहास लेखन को एक नई दिशा देती है तथा मूल्यांकन के नये द्वार खोलती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास– डॉ0 रामस्वरुप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद सं0 1993 ई0–पृ0 17.
2. वही पृ0–25.
3. साहित्येतिहास संरचना और स्वरुप– सुमनराजे, ग्रन्थम, रामबाण, कानपुर, प्रथम सं0 1975 ई0 पृ0–170.
4. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास –पृ0 45,46.
5. वही–पृ0 67.
6. वही–पृ0 69.
7. वही–पृ0 92.
8. वही–पृ0 226.
9. वही–पृ0 317.

© Eureka Journals 2015. All Rights Reserved. ISSN: 2581-3501